प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर ज्ञानार्जन को समझना

आर.अमृतवल्ली

"वाक्य-विन्यास हमें याद दिलाता है कि मुझे एक शिक्षक 'ने पढ़ाया' ; लेकिन एक पुस्तक (या सौंपे गए काम.....) से 'मैं सीखता हूँ'।" - एल.सी.टेलर

प्राथमिक स्तर के शिक्षक विषय-विशेषज्ञ नहीं होते लेकिन उनके लिए दो सन्दर्भों में विशेषज्ञ होना महत्वपूर्ण है : उन्हें समझना होगा कि सीखने का अर्थ क्या होता है और यह भी, कि बच्चा होने का अर्थ क्या होता है। आज मैं इन दो विषयों के बारे में अपनी समझ आपके साथ साझा करना चाहूँगी। ऐसा करते हुए मेरा उद्देश्य इस सवाल को सम्बोधित करना है कि हम अपनी कक्षाओं में ज्ञानार्जन को कैसे सम्भव बना सकते हैं। इसमें भाषा से सम्बन्धित ज्ञानार्जन शामिल है।

इतिहास में ऐसे समय रहे हैं जब बच्चे को छोटे पैमाने के वयस्क के रूप में देखा गया है - और एक अधूरे वयस्क के रूप में भी। इसके बरअक्स बच्चे को देखने का रूमानी नज़रिया है : बच्चा "मानव का पिता है", वह संसार के प्रति स्वत:स्फूर्त और सहज-स्वाभाविक, बिना-शर्त प्रतिक्रिया व्यक्त करने वाला आज़ाद प्राणी है - और यही मन की वह अवस्था है जिस तक पाब्लो पिकासो जैसे महानतम कलाकार पहुँचना चाहते हैं।

स्कूल की कक्षा की बात करें तो पहले नज़रिए के तहत तो बच्चों को अधिकतम सम्भव हद तक वह सब सिखाया जाता है जिसकी जानकारी वयस्कों के पास है। वयस्क के ज्ञान का भण्डार बच्चे के मस्तिष्क में जितना जल्दी सम्भव हो और जितनी अधिक मात्रा में सम्भव हो, उंडेला जाता है। सीखना का अर्थ होता है वह सीखना जिसके बारे में बड़ी उम्र के लोग जानते हैं। दूसरा नज़रिया ज्याँ पिआजे तथा मारिआ मॉन्टेसरी जैसे लोगों का है और इसके मुताबिक़ बच्चे का ख़ुद का प्रत्यक्ष बोध और चीज़ों को देखने-महसूस करने का तौर-तरीक़ा होता है और उसकी समझ धीरे-धीरे समय के साथ विकसित होती है। सीखने या ज्ञानार्जन का अर्थ है बच्चे की मानसिक गतिविधि, यह बच्चे के सोचने के तरीक़े में बदलाव है। आइए, इस बात को वास्तविक जीवन से दो क़िस्सों के आधार पर समझते हैं।

अँग्रेज़ी की एक प्राथमिक स्कूल शिक्षक अपने हाथ ऊपर उठाती है और कहती है - "मेरे दो हाथ और दस अंगुलियाँ हैं।" ऐसा वह इस इरादे से करती है कि बच्चे उसकी बात को उसके पीछे-पीछे दोहराएँ। लेकिन इससे पहले कि वह बच्चों को यह निर्देश दे पाए, एक बच्चा बोल उठता है - "मेरे भी!" इस बच्चे को दण्डित किया गया। शिक्षक बच्चे से नाख़ुश क्यों थी? बच्चे द्वारा दी गई प्रतिक्रिया के आधार पर क्या हम कह सकते हैं कि वह सच में कुछ सीख रहा था? क्या उसने वह पहले ही सीख लिया था जो सिखाने की कोशिश में शिक्षक थी? शिक्षक क्या सिखाने की कोशिश में थी?

दूसरा क़िस्सा। एक बच्चे को कक्षा में किसी-न-किसी कमी या ग़लती के चलते स्कूल की छुट्टी होने पर रोज़ सज़ा के तौर पर सबके साथ घर नहीं जाने दिया जाता। तीसरे या चौथे मौक़े पर माँ उस से पूछती है कि उस दिन क्या समस्या हुई थी। बच्चा कहता है - "अम्मा, मैं समझता हूँ कि *स्टमक पेन* (stomach pain) क्या होता है और *लेग पेन* (leg pain) क्या होता है मगर *विण्डो पेन* (window pane) क्या होता है, यह मेरी समझ में नहीं आता।" उस की माँ ने बच्चे को उस स्कूल से निकाल लिया और एक ऐसे स्कूल में दाख़िल करवा दिया जिसे आज हैदराबाद का सबसे प्रतिष्ठित स्कूल माना जाता है। मेरा संकेत शांता रामेश्वर राव तथा विद्याअरण्य हाई स्कूल की ओर है।

इससे मिलता-जुलता ही एक और क़िस्सा माइकल हओ (Michael Howe) की पुस्तक 'अ टीचर्स गाइड टु द साइकॉलजी ऑव लर्निंग' (A Teacher's Guide to the Psychology of Learning) में है। छोटा बच्चा जॉनी स्कूल जाता है और शिक्षक उससे कहता है - "सिट हेअर फ़ॉर द प्रेज़ेंट" ("Sit here for the present.")। बच्चा जब घर लौटता है तो उदास होता है - शिक्षक ने उसे *प्रेज़ेंट* (यानी तोहफ़ा) नहीं दिया! [शिक्षक ने *प्रेज़ेंट* को उसके दूसरे अर्थ में इस्तेमाल किया था - *'फ़ॉर द प्रज़ेंट'* का अर्थ था - अभी के लिए या फ़िलहाल। यानी उसने कहा था "फ़िलहाल यहाँ बैठो।"]

क्या सीखने का अर्थ यह है कि जैसा हम बच्चे को लिखने या बोलने को कहें, वह उसे बिल्कुल उसी तरह लिखे या बोले? या फिर सीखना और ज्ञानार्जन एक मानसिक गतिविधि है, जिसके तहत बच्चा अपने दिमाग़ में कुछ-न-कुछ कर रहा होता है? अगर हम दूसरे विकल्प को 'सीखना' मानें तो हमें इस बात के लिए गुंजाइश छोड़कर चलना होगा कि शिक्षक और बच्चे के बीच समझ के स्तर की सचमुच में कुछ समस्याएँ हो सकती हैं जिनके बारे में शिक्षक को ध्यान रखना होगा (जैसे कि 'विण्डो पेन' और 'द प्रेज़ेंट' जैसी समस्याएँ)। हो सकता है कि बच्चा हमेशा वह न सीखे जो आप उसे सिखाने की कोशिश कर रहे हैं (शायद मैं भी न सीखूँ)। इस लिए ज़रूरी नहीं है कि सभी बच्चे एक ही समय पर एक-सी बात समझ रहे होंगे।

यह आख़िरी बात ख़ासतौर से प्राथमिक स्कूल और विशेष तौर से भाषा जैसे विषयों के लिए सच है, जिनके बारे में कहा जाता है कि वे एक बच्चे में कुछ विशेष हालात में "विकसित होते" हैं और भौतिक विज्ञान या अल्जबरा की तरह "सिखाए" नहीं जाते। जिस प्रकार हमें आशा रहती है कि छोटे बच्चे शारीरिक तौर पर वयस्क के रूप में विकसित हो जाएँगे, उसी तरह सब बच्चों का मानसिक विकास भी होता है। शारीरिक विकास को पोषित और प्रोत्साहित तो किया जा सकता है लेकिन बाहर से ज़बरदस्ती थोपा नहीं जा सकता (हम किसी को खींचकर लम्बा नहीं कर सकते) - इसी तरह मानसिक विकास को भी बाहर से नहीं थोपा जा सकता (जैसे कि शिक्षक की नक़ल करने, किताब से कुछ सुनाने, ब्लैकबोर्ड से नक़ल करने के लिए बाध्य करते हुए मानसिक विकास करना)। शुरुआती मानसिक विकास प्रारम्भिक शारीरिक विकास की ही तरह लोकतांत्रिक होता है - सभी बच्चे विकास करते हैं, बढ़ते हैं। वे अन्ततः अलग-अलग क़द तक पहुँच सकते हैं, लेकिन उनके बढ़ने के सालों के दौरान यह कहना मुमकिन नहीं होता कि कौन कितना बढ़ेगा। हम उन्हें बढ़ने, विकसित होने में मदद भर करते हैं। इसलिए शुरुआती

मानसिक विकास बच्चों में प्रवृत्ति, योग्यता, बुद्धिमता आदि के स्तर पर कोई अन्तर नहीं करता - दूसरे शब्दों में वह सबमें होता है। सभी बच्चों को मौक़ा दिया जाना चाहिए कि वे जितना चाहें, सीखें। हाँ, हाई स्कूल पहुँचने पर वे विशेष विषयों के लिए बेहतर दक्षताओं या प्रवृत्तियों के आधार पर प्राथमिकताओं का चुनाव कर सकते हैं।

अध्यापन एक सार्वजनिक गतिविधि है; शिक्षक द्वारा कक्षा के लिए तैयारी की जाती है, तय किया जाता है कि उसे क्या पढ़ाना है, पढ़ाने से सम्बद्ध सामग्री को क्रमबद्ध किया जा सकता है, उसे दोहराया जा सकता है, उसका परीक्षण किया जा सकता है और उत्तर-पुस्तिकाएँ जाँची जा सकती हैं। दूसरी ओर, सीखना एक निजी, व्यक्तिगत गतिविधि है। जब यह होती है तो इसे देखा-जाँचा नहीं जा सकता, यह अप्रत्याशित तरीक़ों से हो सकती है और इसके नतीजे भी अप्रत्याशित हो सकते हैं। सीखना या ज्ञानार्जन अध्यापन या शिक्षण की अनुपस्थिति में भी हो सकता है। हम कहते तो हैं कि बच्चा चलना *सीखता* है लेकिन इन्सान द्वारा बच्चे को चलना सिखाना लगभग उतनी ही गम्भीरता से होता है जितना कि पक्षी को उड़ना या मछली को तैरना सिखाया जाना। बच्चे का "बोलना" सीखना उतना ही स्वाभाविक है जितना कि सूरज का पूर्व में 'उगना' और पश्चिम में 'ढलना'। जैसे सूरज उगता हुआ दिखाई देता है वैसे ही बच्चा भाषा सीखता हुआ महसूस होता है - लेकिन बच्चा वास्तव में अपनी बात को सार्थकता के साथ व्यक्त करने के लिए भाषा की पुनर्रचना कर रहा होता है, उसे किसी-न-किसी रूप में फिर से गढ़ रहा होता है। एक तस्वीर का विवरण देते हुए एक बच्चा लिखता है, *"द लाय्न इज़ अफ़्रेडिंग द मैन।"* ("The lion is afraiding the man."). ज़ाहिर है कि यह मानक अँग्रेज़ी नहीं है मगर हमारी आशा यही रहती है कि एक दिन बच्चा इस बात को समझ लेगा। यहाँ बच्चे ने आवश्यकतानुसार एक क्रिया का आविष्कार किया है - दूसरी भाषा के रूप में अँग्रेज़ी सीखने वाला यह शिक्षार्थी बिल्कुल वही कर रहा है जो अँग्रेज़ी को मातृभाषा के तौर पर सीखने वाला कोई तीन से पाँच साल का बच्चा करता है - वह कहता है, *"डोन्ट गिगल मी"* ("Don't giggle me.") [जब कि सही अँग्रेज़ी है, *डोन्ट मेक मी गिगल* - "Don't make me giggle] या "शी गोड इट देअर" ("She goed it there," *यानी* She made it go there.) आदि आदि। कभी-कभी तो बच्चा एक ऐसा जवाब खोज निकालता है जो बिल्कुल स्वीकार्य अँग्रेज़ी होती है लेकिन उस "आइटम" से सम्बद्ध नहीं होता जो हम पढ़ा रहे होते हैं।

मस्तिष्क में भाषा का विकास हो पाए, इसके लिए हमें बच्चे को सार्थक संदेश मुहैया करवाने होते हैं। हमारी कहानी में बच्चा इसी की तलाश में था क्योंकि जब शिक्षक ने कहा, "मेरे दो हाथ और दस अंगुलियाँ हैं" तो बच्चे ने सोचा कि शिक्षक द्वारा अपने बारे में कोई बात बच्चों के साथ साझा की जा रही है - उसी तरह, जैसे कि वह कहे, "मेरे पास एक कुत्ता है, मुझे जूस अच्छा लगता है, मुझे भूख लगी है...।" बच्चे के लिए अर्थ ढूँढ़ना स्वाभाविक है - वह भाषा का प्रयोग मात्र भाषा के वास्ते नहीं बल्कि खेल के रूप में या गीतों या नाटक के रूप में करता है। इसलिए प्राथमिक स्कूल में भाषा सिखाने का एक बहुत सरल तरीक़ा है - गीतों, कहानियों, कविताओं या नाटक के ज़रिए। लय-ताल भाषा को स्मरणीय बना देते हैं, कहानियाँ बच्चे में

रुचि बनाए रखती हैं और इस तरह भाषा बहुत ही आराम से सीख ली जाती है। कहानियाँ सुनाने को भाषाएँ सिखाने की एक विधि के रूप में इस्तेमाल किए जाने के इर्द-गिर्द अन्य देशों में बहुत शोध उपलब्ध हैं - और कुछ भारत में भी। यही बात भाषा को दुनिया के बारे में सोचने-विचारने के साधन के रूप में देखने को लेकर भी है।

सुनने और बोलने के अलावा पढ़ने, लिखने और वर्तनी के बारे में क्या कहा जाए? इनके सन्दर्भ में भी ऐसा लगता है कि बच्चा बहाना करने - एक तरह का स्वांग भरने - और आविष्कार के चरणों से होकर गुज़रता है। अगर हम उसकी "ग़लतियों" को इस रूप में लें कि बच्चा बड़ों द्वारा अपनाए जाने वाले तौर-तरीक़ों के नज़दीक पहुँचने की कोशिश कर रहा है, तो उन "ग़लतियों" को सीखने के सबूत के रूप में देखा जा सकता है। हर शिक्षक की इच्छा होती है कि उसे इस बात का प्रमाण मिले कि बच्चा सीख रहा है - इससे उसे अपने शिक्षण के बारे में फ़ीडबैक मिलता है, जो प्रधानाचार्य या अभिभावक को दिखाने के लिए रिकॉर्ड का काम करता है। लेकिन अगर कोई बच्चा मानसिक गतिविधि किए बिना बड़ों के प्रदर्शन की नक़ल मात्र करता है तो इसे सीखने का सबूत नहीं कहा जा सकता। ऐसी स्थिति में अगर छोटे बच्चे द्वारा त्रुटिरहित प्रदर्शन किया जाता है तो उसे इस बात का प्रमाण नहीं माना जा सकता कि उसने कुछ सीख लिया है। जो बच्चा 'teacher' के लिए वर्तनी 'tchr' ईजाद करता है, वह प्रदर्शित कर रहा होता है कि उसे इस बात का ज्ञान है कि वर्णमाला के अक्षरों की अपनी-अपनी ध्वनियाँ होती हैं; जो बच्चा कुछ पढ़ने का दिखावा करता है, वह जानता है कि पृष्ठ पर कुछ प्रतीक-चिह्न हैं जिन्हें भाषा के रूप में बोला जा सकता है।

पठन से सम्बन्धित शोध से एक विचित्र बात सामने आई है : जो बच्चा असल में पढ़ नहीं रहा बल्कि तोते की तरह रटकर पढ़ रहा है या पठन का बहाना कर रहा है, वह बिना कोई ग़लती किए धाराप्रवाह पठन करता है (यह बात 3 साल के उस बच्चे पर लागू हो सकती है जिसके पास नर्सरी स्तर के गीतों की पुस्तक है)। दूसरी ओर, बच्चा जब ख़ुद से पढ़ने की कोशिश करता है तो उसके पढ़ने की गति घट जाती है, और ग़लतियाँ होने लगती हैं क्योंकि अब वह सचमुच स्वयं से पढ़ रहा है। इस बच्चे को मदद मिलती रहे, नियमित प्रयास हो और शिक्षक उसे कुछ पढ़कर सुनाए और उसके साथ मिलकर पठन करे तो वह पढ़ना सीख सकता है। लेकिन पढ़ने का बहाना करने से लेकर असल में पढ़ने तक का सफ़र बहुत ही ध्यान से तय करना होगा।

समस्या यह नहीं है कि बच्चा पढ़ने या लिखने का बहाना या अभिनय करता है। समस्या तो यह है कि पढ़ने के अभिनय और सच में पढ़ने के बीच के अन्तर को शिक्षक और स्कूल अक्सर देख नहीं पाते। बच्चे को ब्लैकबोर्ड से सवाल-जवाब नक़ल करना सिखाया जाता है - और इसे ही 'लिखना' कह दिया जाता है। हम बच्चे को एक-एक अक्षर लिखते हुए शब्द कॉपी पर उतारते हुए देखते हैं - लेकिन ऐसा करते समय उसका ध्यान अर्थ की ओर नहीं होता। मगर हम तो कह चुके हैं कि बच्चा अर्थ की ओर स्वाभाविक तौर पर ध्यान देता है - फिर गड़बड़ क्या हुई है?

शिक्षण के नाम पर और शिक्षण के बारे में प्रमाण एकत्र करते हुए सम्भावना है कि हम उन स्वाभाविक, प्राकृतिक तौर-तरीक़ों में हस्तक्षेप कर रहे हों जिनके ज़रिए दिमाग़ सीखता है। इसी प्रयोग को लीजिए। लोगों को बैठक के कमरे की एक तस्वीर एक मिनट के लिए देखने को दी जाती है। एक समूह को कहा जाता है कि तस्वीर में X आकार की कुछ स्याही भरी आकृतियाँ हैं और समूह के लोगों को उन्हें तलाशना है। उनके एक उप-समूह को तस्वीर को समानान्तर या सीधी, खड़ी दिशा में स्कैन करके ऐसा करना है; उनके दूसरे उप-समूह को वस्तुओं की रूपरेखाओं को देख कर ऐसा करना है - जबकि असल में तो X आकृतियाँ हैं ही नहीं। इसी तरह दूसरे समूह के भी दो उप-समूह बनाए गए। एक को कहा गया कि वे उन क्रियाओं के बारे में सोचें जो कमरे में मौजूद वस्तुओं का प्रयोग करते हुए की जा सकती हैं या फिर - जैसा कि दूसरे उप-समूह को करना था - वे वस्तुओं की मानसिक छवियाँ बनाएँ। एक मिनट पूरा हो जाने पर पहले समूह के लोग तस्वीर में तीन से आठ वस्तुओं को याद कर सकते हैं। दूसरे समूह के लोग 25-32 वस्तुएँ ध्यान में ला पाते हैं।

उत्प्रेरण तो एक ही था। दिया गया समय भी एक-सा था। और लोगों का चुनाव बिना सोचे-समझे बस यूँ ही किया गया था। नतीजा प्रभावित किससे हुआ? दिए गए निर्देश अलग-अलग थे और उनके नतीजे में होने वाली मानसिक गतिविधियाँ भी अलग-अलग थीं। पहला समूह X की तलाश में था। दूसरा समूह वस्तुओं को देख रहा था और उनके बारे में सोच रहा था। दूसरे शब्दों में, सीखना एक अन्दरूनी, मानसिक गतिविधि है लेकिन वह शिक्षण के तौर-तरीक़े से प्रभावित होती है।

हम मानसिक गतिविधि को कैसे बढ़ावा दे सकते हैं? इसके बारे में सोचने से पहले हमें मानसिक गतिविधि को समझना होगा। सीखने और स्मृति के चरण होते हैं। पहले हमें किसी चीज़ को महसूस करना या उसकी ओर ध्यान देना होता है। फिर हमें उसे अपनी स्मृति में स्थापित करना होता है। यह भी है कि ज़रूरत पड़ने पर हम उसे वापिस याद कर पाएँ (यह अनुभव तो हम सबके साथ हुआ होगा कि बहुत बार कोई बात हमारी ज़ुबान पर आते-आते रह जाती है, जब हम किसी जानी-पहचानी बात को भी याद नहीं कर पाते)।

देखने-महसूस करने या ध्यान देने के बिल्कुल प्रथम चरण पर हुए शोध से संकेत मिलता है कि ध्यान-केन्द्रण अनुभूति के अर्थपूर्ण पक्षों की ओर निर्देशित होना चाहिए। यह बात ऊपर चर्चा में आए प्रयोग से भी ज़ाहिर है। हमारे निर्देशों या सवालों के आधार पर विद्यार्थी उत्प्रेरक पर अलग-अलग समयकाल व्यतीत करते हैं। क्या कुछ प्रश्न अन्य प्रश्नों के मुक़ाबले अधिक अर्थपूर्ण होते हैं? हाँ।

रिक्त स्थान भरने के एक सरल कार्य की मिसाल लेते हैं। देखने में आया है कि कोई शब्द हमारी स्मृति में तब अधिक बेहतर ढंग से आता है जब रिक्त स्थान वाले वाक्य की वाक्य-रचना अधिक जटिल हो। इस प्रकार 'द राइप .... टेस्टिड डिलिशियस' ('The ripe....... tasted delicious') के मुक़ाबले 'द स्मॉल लेडी एंग्रिली पिक्ड अप द रेड ....' ('The small lady angrily picked up the red........') अधिक जटिल है। यहाँ एक चेतावनी ज़रूरी है - बच्चों का

समझ में ही न आने वाले जटिल वाक्य दिए जाते हैं तो उद्देश्य की पूर्ति नहीं होगी। मसला बस यह है कि ज़रूरत से अधिक सरल वाक्य न दिए जाएँ - अगर वाक्य इतने सरल होंगे कि वे निरर्थक लगें, तो बच्चे को समझ में नहीं आएगा कि क्यों या कौन इतना सरल वाक्य बोलेगा। यह विचार आते ही बच्चा वाक्य की ओर ध्यान देना बन्द कर देगा।

अन्त में व्यक्तिगत,निजी प्रासंगिकता की कुछ बात। एक पीएचडी विद्यार्थी को इस बात की सम्भावना दिखाई दी है कि अन्य विषयों पर अच्छा न लिखने वाले बच्चे को स्वयं के बारे में लिखने को कहा जाता है तो शायद वह बहुत अच्छा लिख पाता है। भाषा के ज्ञानार्जन समेत हर तरह के ज्ञानार्जन का छिपा हुआ भेद शायद यही है कि हमारे लिए उसकी कोई-न-कोई व्यक्तिगत प्रासंगिकता होनी चाहिए [मैं वह सीखना चाहूँगी जो मुझे व्यक्तिगत सन्दर्भ के साथ जुड़ता हुआ दिखाई देता है।] इसका अर्थ है कि जहाँ तक सम्भव हो, प्राथमिक स्कूल का काम ऐसा हो कि ज्ञानार्जन प्रत्येक बच्चे को व्यक्तिगत तौर पर प्रासंगिक दिखाई दे [कक्षा में जो सीखना हो रहा है, बच्चे को वह अपने व्यक्तिगत सन्दर्भ के साथ जुड़ा हुआ दिखाई दे।]। स्कूल के कमरे को घर और खेल के मैदान के उतना ही नज़दीक लाया जाए जितना लाया जाना चाह के अनुकूल है। ऐसा होने पर ही बच्चा स्वाभाविक तौर पर बढ़ेगा और सीखेगा। हमारा नज़रिया अगर बच्चे को एक अधूरे वयस्क के रूप में देखने का होगा तो हम हर उस बात को शक की निगाह से देखेंगे जिसे करने में बच्चे को आनन्द आता है। और इस तरह स्कूल का कमरा हमारे प्राकृतिक खेल मैदानों से बहुत दूर हो जाता है। दूसरा नज़रिया यह है कि विचार मस्तिष्क के खेल का मैदान हैं और हमारी ज़िम्मेवारी है कि हम प्रत्येक बच्चे की पहुँच इन खेल के मैदानों तक बनाएँ।

(यह लेख अँग्रेज़ी में सर्वप्रथम एनसीईआरटी नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित "द प्राथमिक टीचर", वॉल्युम XXX, नम्बर 3-4, जुलाई और अक्तूबर 2005, ISSN 0970-9282 में छपा था। अकादमिक सम्पादक : शबनम सिन्हा।)

Select bibliography

- Prabhu, N. S. n.d. “Teaching is hoping for the best.” Unpublished ms.
- Amritavalli, R. 1998. “The pragmatic underpinnings of syntactic competences,”
- Journal of Pragmatics 29, 661-680.
- 1999. “Dictionaries are Unpredictable,” ELT Journal 53/4, 262-269. Essex, U.K.18
- 1999. Language as a Dynamic Text: essays on language, cognition and communication. Hyderabad: CIEFL Akshara series.
- Howe, Michael J.A. 1984. A Teacher's Guide to the Psychology of Learning. Basil Blackwell.

आर. अमृतवल्ली इंग्लिश एण्ड फ़ॉरेन लैंग्वेजिज़ यूनिवर्सिटी, हैदराबाद के भाषा-विज्ञान विभाग में प्रोफ़ेसर हैं। उनकी रुचि सैद्धांतिक भाषा-विज्ञान तथा प्रथम एवं द्वितीय भाषा ज्ञानार्जन के क्षेत्र में है। उनसे amritavalli@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है।

यह *Learning Curve, Issue XIII (Language Learning)* अक्टूबर,2009 में प्रकाशित लेख Understanding Learning at the Primary Level का हिन्दी अनुवाद है।

अनुवाद : रमणीक मोहन **पुनरीक्षण एवं सम्पादन :** राजेश उत्साही